अंतरा-शब्दशक्ति

लहरों में मोती

आलेख संग्रह

माधुरी मिश्रा

लहरों में मोती

(आलेख संग्रह)

माधुरी मिश्रा

अन्तरा-शब्दशक्ति प्रकाशन

वारासिवनी, मध्यप्रदेश

ISBN-978-93-86666-56-7

अन्तरा-शब्दशक्ति प्रकाशन

मुख्य कार्यालय - १५ नेहरु चैक वारासिवनी, जिला बालाघाट (म.प्र) ४८१३३१

शाखा- एस-२०७, नवीन भवन, इंदौर प्रेस क्लब परिसर, इंदौर (म.प्र.) ४५२००१

दूरभाष- (कार्या.) ०७६३३-२५३१५९ (मो) ९४२४७६५२५९

अणुडाक- antrashabdshkti@gmail.com

अंतरताना- www.antrashabdshakti.com

प्रथम संस्करण २०१८- माधुरी मिश्रा

मूल्य - ५५.०० रुपये

आवरण चित्र- संदीप सोनी, वारासिवनी

मुद्रक- शैलू कम्प्यूटर्स, वारासिवनी

Lahron Me Moti men by Madhuri Mishra

वैधानिक चेतावनी - इस पुस्तक का सर्वाधिकार सुरक्षित है। लेखक की लिखित अनुमति के बिना इसके किसी भी अंश को फोटोकापी एवं रिकार्डिंग सहित इलेक्ट्रोनिक अथवा मशीनी किसी भी माध्यम से अथवा संग्रहण और पुनर्प्रयोग की प्रणाली द्वारा किसी भी रूप में पुनरुत्पादित अथवा संचारित प्रसारित नहीं किया जा सकता है। प्रस्तुत पुस्तक की समस्त रचनाएँ लेखक द्वारा अन्तरा शब्द शक्ति प्रकाशन को प्रेषित की गई है अतः प्रत्येक रचना की मौलिकता के किसी भी दावे हेतु लेखक जिम्मेदार है। प्रस्तुत पुस्तक के घटनाक्रम पात्र, भाषाशैली एवं स्थान सभी लेखक की कल्पना है। किसी भी प्रकार के वाद-विवाद के लिए प्रकाशक का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

अपनी बात

जीवन में हम घर,परिवार, समाज से लेकर पूरे देश और संसार के विषय में नित्य कुछ न कुछ सुनते ही रहते हैं, किसी का जन्म और किसी की मृत्यु का समाचार भी उन में एक होता है।

जैसा स्वाभाविक है, जन्म का समाचार प्रसन्नता का कारण बनता है और मृत्यु की सूचना शोक का, यह जानते हुये भी कि जिसने जन्म लिया उसकी मृत्यु निश्चित है। जन्म और मृत्यु के बीच का समय ही हमारा जीवन है। इसी समय पर हमारा अधिकार है, हम इसे चाहे जैसे बिता दें।

जीवन में बहुत सारी घटनायें घटती रहती है, असंख्य विचार मन में आते रहते हैं। क्या करें और क्या न करें? इच्छा बहुत कुछ करने की होती पर संभव नहीं होता।

कुछ मनुष्य अपने स्वप्नों को पूरा करने के लिये आजीवन प्रयासरत रहते हैं। एक स्वप्न पूरा होते ही, वे दूसरा स्वप्न देखने उसे पूर्ण करने में लग जाते हैं। स्वाभाविचक है रास्ते में बाधाओं का आना, लेकिन बाधायें उन्हें रोक नहीं पाती।

अपने कर्म-पथ पर बढ़ते जाना ही उनका लक्ष्य रहता है। जीवन के उतार-चढ़ाव, उठा-पटक के बीच भी वे अपने लक्ष्य को मन-मस्तिष्क में सुरक्षित रखते हैं, किसी अनमोल मोती के तरह। बस देखना केवल इतना ही है कि लक्ष्य स्वार्थ केन्द्रित न हो कर बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय हो।

अपने आलेखों के माध्यम से जो विभिन्न विषयों पर हैं, मैने अपने जीवन लहरों में पाये विचारों के मोती को, अपनी दृष्टिकोण को, एक लड़ी में पिरो कर आपके समक्ष रखने का प्रयास किया है।

मेरी पुस्तक **"लहरों में मोती"** में निम्नलिखित आलेख प्रस्तुत है जिन पर पाठकों की समीक्षात्मक प्रतिक्रियाओं की प्रतीक्षा रहेगी।

१.**वृद्धावस्था-**जीवन में विश्राम के पल

२.**विलक्षण धरोहर-**हमारी सांस्कृतिक विरासत।

३.**हिन्दीशिक्षण-**विद्यालयों में अनिवार्य होना चाहिये।

४.**साहित्य-**जीवन को सार्थक करता है।

५.**प्रेम का महत्त्व-**दहशत के समय।

६.**रीतियों को बचायें-** कुरीतियां बनने से।

७.**स्वतंत्रता वरदान है-**उसकी गरिमा बनाये रखें।

आभार सहित

माधुरी मिश्रा, जबलपुर।

वृद्धावस्था-जीवन में विश्राम के पल

वृद्धावस्था मानव जीवन का सत्य है। मनुष्य जन्म के पहले से ही संघर्ष में लग जाता है। प्रत्येकअवस्था में उसके संघर्षका स्वरूप अलग रहता है।

मां के गर्भ में समय पूरा करने पर बाहर दुनिया में आने के लिये भी उसे संघर्ष करना पड़ता है। गर्भ से बाहर आकर उलटते, पलटते, गिरते, बैठते वह अपने पैरौं पर खड़ा होकर चलने लगता है, दौड़ने लगता है, न केवल शरीर वरन मन को भी चलाते, दौड़ाते रहता है पूरी ज़िन्दगी। शरीर और मन के साथ-साथ समय भी चलता रहता है और फिर एक दिन मनुष्य का शरीर थकने लगता है शरीर के साथ मन भी थकने लगता है, और चाहता है विश्राम, यह वृद्धावस्था की शुरूआत है। धीरे-धीरे मनुष्य चाहते हुये भी ज्यादा कुछ कर नहीं पाता और उसेअपने कामों के लिये भी दूसरे पर निर्भर होना पड़ता है।

उस समय अगर परिवार का प्रेम, आदर, सहयोग मिले तो वृद्धावस्था भी आराम से निकल जाती है। नहीं तो बड़ी कारूणिक स्थीति हो जाती है। आजकल जो देखने-सुनने में आ रहा है, और जिस तरह वृद्धाश्रमों पर लोग निर्भर रहने लगे हैं, मन में परिवार के प्रति अपने भविष्य के प्रति निराशा ही उत्पन्न होती है। मुझे तो कभी-कभी लगता है, वृद्धाश्रम अच्छा विकल्प है, उनके लिये जिनके परिवार में वृद्धों के लिये किसी के पास समय नहीं है या फिर जिनके परिवार के लोग नहीं चाहते।

अपने ही घर में अपनों द्वारा उपेक्षित होकर बेबसी में रहने से कहीं अच्छा है, वृद्धाश्रम में अपने हमउम्र लोगों के साथ सुख-दुख की, अपने अतीत की घर-परिवार की बातें करते समय बिताना। वृद्धावस्था में अगर परिवार

के लोगों से प्रेम, सम्मान मिले तो परिवार में ही सर्वत्र का सुख मिलता है, इसमें कोई संदेह नहीं।

इसके लिये वृद्धों को भी सामंजस्य बनाने की कोशिश करनी चाहिये और परिवार के लोगों पर व्यर्थ टीका-टिप्पणी से बचना ही उचित है।

हम अपने समाज में परिवार में आज तक बेटे की शादी की चर्चा होने पर यही सुनते आये थे कि, शादी तो तभी होगी जब थोड़ा जिम्मेवार हो जाय। थोड़ा जिम्मेवार होने का मतलब यह नहीं होता कि शादी के बाद मां-बाप पर से बेटे-बहू की जिम्मेवारी बिल्कुल खतम हो जाती थी, बल्कि जिम्मेवारी तो और बढ़ ही जाती थी।

दूसरे घर से आयी बहू को अपने घर के नियमों, परम्पराओं अनुसार सब कुछ बतलाना, समझाना और वो भी इस तरह कि बहू को कुछ बोलेंगे, उसे ऐसे बतलाना कि सब कुछ वह सहर्ष सहज रूप में ही स्वीकार करके अपनाती जाय। फिर बेटा-बहू का परिवार बढ़ता था, पोता-पोती की भी अधिकांश जिम्मेवारी सास-ससुर ही सम्हालते थे, अपनी जिम्मेवारी, अपना दायित्व मानकर, किसी दबाव में आकर नहीं। बेटा-बहू घर-परिवार में सहयोग करना अपना कर्तव्य मानते थे और इस प्रकार एक-दूसरे पर निर्भर होकर, एक दूसरे का सहयोग करते हुवे जीवन आगे बढ़ता जाता था, एक ऐसा सामंजस्य, आदर और प्रेम, स्नेह दो, तीन पीढ़ी के बीच स्थापित हो जाता था, जो जीवनपर्यन्त तो नहीं ही टूटता था, बाद में भी लाये नहीं भूलता था। इस तरह वृद्धावस्था के लिये भी सुरक्षित तैयारी साथ ही साथ शुरू हो जाती।

बेटी की शादी के समय भी सबसे पहले यही देखते थे कि लड़का कैसा है? जिम्मेवार है कि नहीं? अगर वह लापरवाह होगा, तो हमेशा वैसा ही बना रहेगा। इसी तरह अपनी बेटियों को भी शिक्षा के साथ ही तरह-तरह तरह की बातें समझा कर उन्हें भावी सुखी विवाहित जीवन के लिये तैयार

करते थे। जिनके घर में बड़ी विवाहिता बहनें या भाभियां होती थीं वे स्वयं ही उनके आचार-व्यवहार को देख-सुनकर बहुत कुछ सीख जाती थी। फिर शादी के बाद लड़का या लड़की का नया सफर शुरू होता था। जैसे-जैसे परिवार बढ़ता जाता था, लड़का और लड़कियों में सर्वत्र: ही जिम्मेवारी की भावना आ जाती थी, तथा वे भावी जीवन की तैयारियों में क्षमतानुसार जुट जाते थे और सारे कर्तब्य पूरा भी करते थे। मां-बाप बेटा या बेटी के नये जीवन की शुरूआत में तथा पोता-पोती या नाती-नतनी के आगमन के समय अपनीक्षमता एवं सामर्थ्य अनुसार भरपूर सहायता करते।

और इस तरह खुशी एवं विश्वास के साथ अपने वृद्धावस्था की तैयारी सन्तोषपूर्वक करते थे। शायद ही पहले कभी किसी वृद्ध को अपने अंतिम समय में परिजनों से बहुत अधिक निराश मैंने देखा था। हाँ अपवाद स्वरूप कुछ लोग रहते थे, लेकिन उनकी संख्या कम थी और उनका व्यक्तिगत आचार-विचार भी एक कारण रहता था। लेकिन मैंने देखा है कि पिछले बीस-पचीस सालों में भारतीय समाज में एक अभूतपूर्व परिवर्तन आया है,जो पहले नहीं था।

इस समयावधि में जिनका जन्म हुआ, जो बड़े हुये,पले-बढ़े और समर्थ होकर अपनी जिम्मेवारी समझने लगे, उनमें ये भावना प्रबल रूप में प्रगट होने लगी कि वे स्वयं बिल्कुल सक्षम हैं, और उन्हें अपनी जिम्मेवारी निभाने में कतई दूसरे की जरूरत नहीं है, अपने मां-बाप के सक्रिय सहयोग की जरूरत तो दूर, उनके विचारों तक की अवहेलना उन्होंने शूरू कर दी। शायद इसमें उन बहुराष्ट्रीयसंस्थाओं का भी अप्रत्यक्ष रूप से ही सही,बड़ा योगदान है जो अपने कर्मचारियों को अल्प अवधि के लिये भी सपरिवार विदेश जाने की सुविधा देते हैं।

युवा दम्पति अल्पसमय में भी विदेशी रंग में इतना रंग जाते कि स्वदेश आकर वे भी अपना पारिवारिक जीवन वैस ही व्यतीत करना चाहते

हैं, और यहीं से शुरू हुआ बुजुर्गों में अपने भविष्य को लेकर असुरक्षा की भावना। पहले बेटा-बहू के साथ, पोता-पोती के बीच बुजुर्ग बहुत ही प्रसन्न रहते थे, वे अपने को सर्वाधिक सुरक्षित एवं भाग्यशाली समझते हुये जीवन व्यतीत करते थे, कब पारिवारिक सत्ता उनके हाथ से फिसलते-फिसलते बेटा-बहू के हाथों में चली जाती उन्हें पता भी नहीं चलता, और जब पता चलता, तो वे खुश ही होते क्योंकि उनका अपना वर्तमान और भविष्य की सारी खुशियां भी सुरक्षित थीं। सास-बहू एक-दूसरे की पूरक बनकर समय व्यतीत करती थी।

लेकिन आजकल मैं जो कुछ अपने चारों तरफ होते देख रही हूं, उसमें मुझे लगता है कि सास-बहू एक-दूसरे की पूरक न बनकर प्रतिद्वन्दी बन रही हैं। इन परिस्थीतियों में मेरी समझ से बुजुर्गों को ही समझदारी और विवेकयुक्त संयम से बिच का रास्ता निकालना चाहिये। वृद्धावस्था में सम्मानपूर्वक, शान्तिपूर्ण जीवन व्यतीत करने की व्यवस्था उन्हे बहुत पहले, शायद उन्हीं दिनों से शुरू कर देनी चाहिये जब वे बहू को अपने घर लाती हैं।

भारतीय समाज में हर जगह वधू -प्रवेश के समय होने वाले रीति-रिवाजों में प्रतीक रूप से ही सही ऐसे संकेत छिपे हुयेहैं, जो स्पष्ट करते हैं, कि बहू का भी इस घर-परिवार में उतना ही महत्वों होगा, जितना आज आपका है।

इसलिये उदारतापूर्वक उसे उसका स्थान देने में संकोच करते, उसे सही मार्गदर्शन दें, आज आप अगर उसे स्नेह और सम्मान देंगी तो विश्वास रखें कि जब आपको आवश्कता होगी, बहू पूरे ब्याज सहित आपका दिया सबकुछ आपको वापस लौटायेगी। दूसरी बात है अपने मन को तैयार करना, इसकी तैयारी भी समय रहते ही कर लें तो अच्छा है।

यह मान के चलें कि एक दिन बुढ़ापा आना ही है और जब शरीर को यह अनुभव होने लगे कि शरीर थकने लगा है, तो धीरे-धीरे अपनी दिनचर्या में, आदतों में, शौक़ में परिवर्तन करना शुरू करें।

यह हमेशा ध्यान रखें कि जीवन में पैसा बहुत महत्त्वपूर्ण है, इसलिये भविष्य की अपनी आवशयकता तथा वर्तमान की अपनी क्षमतानुसार भविष्य के लिये पैसों की व्यवस्था अवश्य कर लें, नहीं तो अपने ही बच्चों के सामने आवश्यक आवश्यकताओं के लिये भी हाथ फैलाना ही पड़ेगा और आपका आत्मसम्मान आहत होता रहेगा, इसलिये पैसे की समुचित व्यवस्था करें, लेकिन हमेशा याद रखें कि पैसा ही सबकुछ नहीं है।

पैसे के बल पर आप सब कुछ नहीं प्राप्त कर सकती हैं। कभी-कभी पैसा बड़े अनर्थ और पारिवारिक कलह का कारण भी बन जाता है। अपने परिवार तथा समाज के प्रति अपना आचरण, स्वाभाव तथा बच्चों को दिये प्रेम तथा संस्कार के बल पर आप कम पैसे तथा साधनों में भी अपना जीवन शान्ति से व्यतीत कर सकती हैं, इस आत्मविश्वास के साथ ही इस भौतिकतापूर्ण युग में भी अपने वृद्धावस्था के जीवन की तैयारियां करें।

जिनके बच्चे बाहर रहते हैं, उन बुजुर्गों के लिये यह बहुत आवश्यक है कि वे नजदीक में रहनेवाले अपने मित्रों,संबन्धियो, तथा पड़ोसियों से अच्छा संबन्ध बनाकर रखें, तथा बीच-बीच में फोन से ही सही उनकी खोज-ख़बर रखें, तथा बराबर सम्पर्क बनाये रखें। वृद्धावस्था ज़िन्दगी का सच है, अब इसे कैसे बितायें, स्वयं विचार करें तथा समय रहते अपने आपको तैयार करें।

विलक्षण धरोहर-हमारी सांस्कृतिक विरासत

अपनी सांस्कृतिक विरासत की रक्षा कैसे की जाय, उसे कैसे बचायें, अधिक समृद्ध कर अपनी अगली पीढ़ी को कैसे हस्तान्तरित करें, यह हम लोगों का, वर्तमान पीढ़ी का एक परम आवश्यक पावन एवं पुनीत कर्तब्य है।

इसमें कोई संशय नहीं कि आज जब सब कुछ बहुत तेजी से बदल रहा है, भारत की सांस्कृतिक विरासत को बचाना, उसे अक्षुण्ण रख, उसका स्वरूप बिगड़ने नहीं देना, बहुत कठिन कार्य है, लेकिन यह हमारा प्रथम कर्तब्य है, इसमें कोई सन्देह नही। सर्वप्रथम हम देखें कि 'सांस्कृतिक विरासत' है क्या? किसे कहेंगे हम अपनी सांस्कृतिक विरासत?

'संस्कृति' से ही सांस्कृतिक शब्द बना है। संस्कृति से हमारा तात्पर्य क्या है?

भारतीय संस्कृति का मूल तत्व है -धर्म, ईश्वर, आध्यात्म एवं मोक्ष। इसी के माध्यम से मानव की नैतिक, बौद्धिक एवं आध्यात्मिक क्षमता को जागृत कर उसे श्रेष्ठता प्रदान करना है।संस्कृति में वह सब शामिल है, जो एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित की जाती है। जैसे ज्ञान, धार्मिक विश्वास, कला, कानून, नैतिक नियम, रीति-रीवाज, तौर-तरीके, साहित्य, संगीत और भाषा, इत्यादि। इस तरह हम पाते है कि हमारे वेद, पुराण या कोई भी धार्मिक ग्रंथ, पूजा-पाठ के तरीके, प्राचीन मंदिर या धार्मिक स्थल के साथ ही भव्य और ऐतिहासिक महत्व के किले, महल, स्मारक ही नहीं गंगोत्री से

निकली गंगा, यमुनोत्री से निकली यमुना के साथ ही अनेक पवित्र नदियां, झीलें तथा स्थल हमारी सांस्कृतिक विरासत हैं, जो हमारे लिये अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।

हमें इनके महत्व को अवश्य समझना चाहिये, और अपने बाद वाली पीढ़ी को भी बताते रहना चाहिये।हमस भी जानते हैं कि भारतीय संस्कृति बहुत ही परिष्कृत एवं उच्च कोटि की है, और ये बात सारा विश्व जानता है। यहां एक बात और ध्यान देने की है कि समाज और संस्कृति प्राय: एक दूसरे से मिले हुये लगते हैं, किन्तु संस्कृति केवल मानव में ही पायी जाती है, जब कि कुछ पशुओं का भी अपना एक समाज होता है।

आधुनिकता के इस युग में याता-यात और संचार के त्वरित और सर्व-सुलभ साधनो के कारण सारे विश्व में व्यक्ति एक-दूसरे के सम्पर्क में आ रहा है, एक-दूसरे के आचार -विचार, खान-पानसे प्रभावित हो, अपना जीवन-शैली, अपना आदर्श एवं संस्कार को भूल, दूसरे की शैली आचार-विचार को अपनाने लगता है, क्योंकि आज व्यक्ति या विचार को एक जगह से दूसरे जगह तक पहुंचने मे कुछ भी समय नहीं लगता, और नवीनता सबको आकर्षित करती है।

प्रगतिशीलता बहुत अच्छी चीज है, वगैर प्रगतिशील हुये हमजीवन में आगे नहीं बढ़ सकते, इसलिये एक-दूसरे से मिलना-जुलना, दुनिया को जहां तक संभव हो देखना,समझना आवश्यक है, इससे हमारी दृष्टि विस्तृत होती है, बुद्धि तीव्र हो कर, सोचने-समझने की शक्ति बढ़ती है। वरना हम कूपमंडूक बन कर रह जायेंगे, दुनिया आगे बढ़ जायगी। लेकिन यहीं पर

समझदारी आवश्यक है। हम सबसे मिलें, सीखें, आगे बढ़ें, लेकिन यह कभी नहीं भूलें कि हम क्या हैं?

हमारे आदर्श और संस्कार क्या हैं? अपना देश,अपनी भाषा और संस्कार पर गर्व करें, स्वयं भी सम्मान करें, और दूसरों से भी सम्मान दिलायें। भारतीय संस्कृति बहुत उन्नत एवं विलक्षण है, विलक्षण इसलिये कि इसमें उदारता एवं दूसरी संस्कृति को अपने में समाहित कर लेने का अद्‌भुतगुण है, इसीलिये तो प्राचीनकाल से ही विश्व के प्राय: सभी भागों के लोग अपने साथ अपनी संस्कृति अपनी सभ्यता समेटे हमारे देश में आये, और यहीं के हो कर रह गये। भारतीय संस्कृति में घुल-मिल कर उन्होने इसे और अधिक समृद्ध किया। यही कारण है कि हमारे देश में विभिन्न प्रकार की सांस्कृतिक झलक दिखायी देती है, जो एक साथ मिल कर अत्यन्त आकर्षक एवं सुन्दर रूप ले लेती है।

हमें इस की रक्षा कर, इसे और अधिक परिष्कृत तथा उपयोगी बनाआने वाली पीढ़ी को हस्तान्तरित करना है। इसके लिये आवश्यक है कि अपने घर परिवार, समाज और देश में रहते हुये तो हम अपने संस्कारों का पालन करें ही, देश सेबाहर आते-जाते रहते हुये भी इसे न छोड़े। अपने देश से बाहर भी अगर कोई स्वदेशी मिले तो बिना किसी झिझकया संकोच के उससे अपनी ही भाषा में बातें करे। सबसे बड़ी बात है अपने को समझना, अपना देश, अपनी संस्कृति और भाषा पर गर्व करना, तथा उसे कार्यरूप में लाना। कि सीभी बात का मिथ्याभिमान अनुचित है, किन्तु स्वाभिमान की रक्षा आवश्यक है। इस सूक्ष्म अंतर को समझ कर व्यवहार में लायें।

यह विषय अत्यन्त विस्तृत एवं गंभीर है। संस्कृति के बहुत सारे पक्ष हैं, जिस पर गहन चर्चा यहां संभव ही नहीं है।

संक्षेप में इतना ही समझ लें कि, हम अपने स्तर से जो कुछ भी कर सकते हैं, भारतीय संस्कृति की रक्षा और संवर्द्धन के लिये वह निष्ठापूर्वक अवश्य करें।

हर माता-पिता का यह परम कर्तव्य है, कि बचपन से ही पालन-पोषण के साथ ही, अपने बच्चों में अच्छे संस्कारों के बीज डाले। उन्हे अपनी संस्कृति का ज्ञान दें, उसे उस का संवर्द्धन करना तथा, उस पर गर्व करना सिखायें, लेकिन एक बात अवश्य ध्यान रखें कि हम अपने आपकी भी समीक्षा करते रहें, कि हम कर क्या रहे हैं? स्वयम् हम सही रास्ते पर हैं या नहीं, अगर अपने बात, विचार, व्यबहार से लगे कि-" मैं भटक रहा हूं, अपनी संस्कृति से अलग काम कर रहा हूं," तो तुरन्त बेझिझक अपने को सुधार लें। क्योंकि बच्चे आपके बात व्यवहार, जीवनशैली को बहुत ध्यान से देखते हैं और धीरे-धीरे उम्र के साथ उसे अपनाने लगते हैं। बचपन से जो देखते हैं बड़े होने तक वे सभी बातें उनके मन पर अपना स्थायी छाप छोड़ चुकी रहती है।

अपने बच्चों को उचित-अनुचित के अंतर को समझने का ज्ञान अवश्य दें, क्योंकि चाहे- अनचाहे समय के साथ कुछ अवांछित बाते समाज में प्रवेश कर ही जाती है, कूड़े-कचरे की तरह हमें उसे साफ करते रहना पड़ेगा।

तभी हम भारत की पावन 'संस्कृति' की रक्षा करने में समर्थ रहेंगे, जिस पर हमारे भविष्य के नौनिहाल गर्व करेंगे।

हिन्दी शिक्षण-विद्यालयों में अनिवार्य होना चाहिये

हमारे देश के विद्यालयों में हिन्दी शिक्षण अनिवार्य होना, वह भी प्राथमिक स्तर से ही अत्यन्त आवश्यक है। यह उतना ही आवश्यक है, जितना जीवित रहने के लिये भोजन और पानी।

हम देख ते हैं कि नन्हें पौधौं को बड़ा होने, उसके जड़को उचित रूप से फैलने, पौधे को वृक्ष बन पल्लवित, पुष्पित हो फलदार, छायादार बनने तक उसे देख-भाल की जरूरत हो ती है, उस पर नज़र रखनी पड़ती है, तभी मनोवांछित मीठे फल सालो-साल मिलते रहते हैं। इसी तरह हमें अपने बच्चों के शिक्षा के बारे में भी शुरू में ही सोचना चाहिये कि इसे कैसी शिक्षा मिले, किस माध्यम से मिले कि इसकी जड़ें मजबूत बनकर चारो तरफ फैल सकें, तथा वह स्वयं फलदार वृक्ष की तरह समाज, देश एवं विश्वको अपनी छाया मे शान्ति और सन्तुष्टि दे सके।

आज हम अपने समाज में किसी भी तरफ नज़र दौड़ाते हैं तो पाते हैं कि, सब के सब अभिभावक जो आर्थिक रूप से सक्षम हैं, या उतने सक्षम न रहते हुये भी,बच्चों के भविष्य के लिये चिन्तीत एवं महत्वाकांक्षी है, अपनी क्षमता से आगे बढ़ कर भी, अपने बच्चों को अंग्रेजी माध्यम के अच्छे से अच्छे स्कूल में ही पढ़ाना चाहते हैं, ताकि आगे उसे कोई दिक्कत नहीं हो, अंग्रेजी पढ़ने, लिखने, बोलने, समझने की आदत बनी रहे, इसलिये बच्चों को प्लेस्कूल या नर्सरी से ही उसे उसी तरह के स्कूल में डालते हैं। घर में भी मां-बाप बच्चों

को अंग्रेजी माध्यम से ही पढ़ाते और समझाते हैं। नतीजा ये होता हे कि बच्चों को हिन्दी भाषा बोझिल, उबाऊ, और थोपी हुयी लगती है। जबकि अंग्रेजी उन्हे सहज, सरल और अपनेपन का आभास देती है। ऐसा क्यों होता है?

अंग्रेज तो हमारे देश से चले गये, लेकिन अंग्रेजियत नहीं गयी।हमारा देश अंग्रेजों के गुलामी से आजाद तो हो गया, लेकिन इतने सालों पश्चात भी हम मानसिक गुलामी से आजाद नहीं हो पाये। इसीलिये तो हम आज भी गर्व से बताते हैं कि मेरा बच्चा फलाने इंग्लिश मीडियम स्कूल में पढ़ता है या फलाना डेयाबोर्डिंग हॉस्टल में रहता है, जहां शुरू से अन्त तक सब कुछ अंग्रेजी में ही पढ़ाया जाता है और ऐसा बताते हुये, हम गर्व भी महसूस करते हैं। और तो और मैने ऐसे परिवार भी देखे हैं, जहां मां-बाप दूसरों से तो हिन्दी में अच्छी तरह बातें करते हैं, लेकिन वहीं अपने बच्चों से अंग्रेजी में ही बाते करेंगे, अगर कभी बच्चे या मां-बाप एक दूसरे से हिन्दी में अपनी बातें करना शूरू भी करें तो बहुत जल्द असहज महसूस करने लगेंगे और अपनी बात पर जोरदेने या सामने वाले को आश्वस्त करने के लिये शीघ्र ही अंग्रेजी में बोलने लगेंगे।

उन्हें इस तरह बोलते देख मैं अक्सर सोचने लगती हूंकि-बात क्या है? क्या हिन्दी के शब्द-कोष उन्हे अपनी मन कीबातें बताने के लिये छोटे पड़गये, या वे दूसरों को मूर्ख समझते हैं, और सोचते हैं कि वे उनकी बातें नहीं समझेंगें। मैने कुछ ऐसे परिवार भी देखे हैं, जो बच्चों को छुट पन से ही अंग्रेजी भाषा की घुट्टी जवर्दस्ती पिलाता है,और नहीं मानने पर बच्चों को डांट डपट तथा मार तक खानी पड़ती है।

अब आप इसे क्या कहेंगे मानसिक गुलामी ही न! अगर हम सही अर्थ में हिन्दी प्रेमी हैं, और हिन्दी के लिये, कुछ करना चाहते हैं तो, हम सभी का ये नैतिक कर्तव्य है, कि हम ऐसे लोगों की मानसिकता बदलने का प्रयास अवश्य करें, उन्हे इन बातों के लिये प्रोत्साहित हर्गिज न करके उन्हें हतोत्साहित करें। स्वयं भी अपने बच्चों को हिन्दी माध्मम के अच्छे विद्यालयों में दाखिला दिलवायें तथा उसके अच्छे भविष्य के निर्माण के लिये सचेत रहें, तथा दूसरों को भी प्रेरित करें।

मेरे बच्चों ने हिन्दी माध्मम वाले विद्यालयों से ही अपनी पढ़ाई शूरू की, आगे चल कर सबने विज्ञान विषय को ही पढ़ना पसंद किया।भौतिकी, रसायनशास्त्र, वनस्पति शास्त्र जीव शास्त्र, सूक्ष्म जीव विज्ञान आदि की अच्छी किताबें आसानी से नहीं मिलती थी,अच्छे और समुचित ज्ञान के लिये उन्हें अंग्रेजी भाषा की किताबें ही पढ़नी पड़ती थी, जिसमें शुरू में उन्हे कुछ कठिनाई हुयी, लेकिन अपने अच्छे ज्ञान और दृढ़ ईच्छा शक्ति केवल पर उन्हो ने शिघ्र ही इस कठिनाई पर विजय प्राप्त कर, मनोवांछित विषय में सम्मान पूर्वक शिक्षा प्राप्त की।

बचपन से हिन्दी माध्मम की पढाई इस में बाधा नहीं हुयी और हिन्दी के प्रति प्रेम, आदर और आकर्षण भी अभी तक बना हुआ है, आजीवन रहेगा ही,चाहे वे विदेश में कहीं भी रहें, अपने बच्चों को भी हिन्दी का ज्ञान अवश्य देंगे। सबसे बड़ा लाभ यह हुआ कि,बचपन से पढ़ी और समझी हिन्दी भाषा से भी उनका लगाव बना रह गया।

मुझे लगता है किस भी विद्यालयों मे चाहे वह देश के किसी भी राज्य के हों,सरकारी हों या निजी, पहली कक्षा से ही हिन्दी को अनिवार्य विषय के रूप में पढ़ने-पढाने की व्यवस्था होनी चाहिये। छोटे-छोटे बच्चे अगर अंग्रेजी सीख सकते हैं तो हिन्दी में क्या कठिनाई है?

हमारे देश के शिक्षाविदों और देश तथा राजमंत्रियों, नेताओ को अपने-अपने स्वार्थ से ऊपर उठकर इस विषय पर गंभीरता से सोचना चाहिये। अपनी डफली अपना राग छोड़ कर एक जुट हो हिन्दी का समर्थन करें। उच्च एवं तकनीकी शिक्षा के लिये भी हिन्दी भाषा में प्रभावी एवं उपयोगी पुस्तकें सर्वसुलभ हो, इस पर सरकार को विशेष ध्यान दे कर त्वरित प्रयास करना होगा और इसे साकार रूप देने के लिये हमारे देश के विद्वानो, भाषाविदों, शिक्षाविदों तथा हिन्दी सेवियों को बहुत प्रयास करना होगा।

हिन्दी ही हमारे देश को एक सूत्र में बांध कर रख सकती है। क्योंकि हिन्दी भाषा ही इतनी सामर्थ्यवान है और इसके लिये विद्यालयों में प्राथमिक स्तर से ही हिन्दी की पढ़ाई अनिवार्य करनी ही होगी।

साहित्य-जीवन को सार्थक करता है

मानव जीवन जितना सरल और स्वाभाविक दिखायी देता है, वास्तव में वह उतना ही कठिन और परिस्थितिजन्य है। यही कारण है कि एक मानव का जीवन दूसरे मानव से भिन्न होता है।

संसार में सभी मनुष्यों का चाहे वह नर हो या नारी, मां के गर्भ में पलने का और संसार में आने का तरीका एक ही होता है। (शल्यचिकित्सा की बात अपवाद है) लेकिन जन्म के पश्चात जब पिता-माता उसे अपने हाथों में सम्भालते हैं, तो शुरू हो जाता है उसके जीवन का प्रबन्धन, और यहीं से प्रारम्भ होता है, एक मानव से दूसरे मानव का जीवन में अंतर, जो माता-पिता की सूझबूझ, बौद्धिक और आर्थिक क्षमता, तथा प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे से भिन्न होता है।

साहित्य एवं समाज एक-दूसरे के आश्रित हैं। मनुष्य जब बड़ा होकर अपने परिवार और समाज तथा देश-दुनिया को देखने-समझने लगता है, तो उसी के अनुरूप वह अपने भावी जीवन की कल्पना करता है, कल्पना को साकार रूप देने में उसे कई व्यक्तियों, परिस्थितियों और मानसिक स्थितियों का सामना करना पड़ता है। कुछ बातें व्यक्ति विशेष को उद्वेलित कर देती हैं। वहीं, वही बातें किसी दूसरे पर कोई प्रभाव नहीं डालती, वह उन बातों से निर्विकार रहता है।

साहित्य का सृजन हमेशा से किसी न किसी विधा में होता आया है,और होता ही रहेगा। साहित्य अच्छा या बुरा सभी रूपों में,आज विभिन्न माध्मयों से जनता के लिये सर्वसुलभ है, लेकिन पहले ऐसा नहीं था। दूरदर्शन, एवं संचार के अन्य साधनों के माध्यम से सीरीयल, समाचार, वार्तायें इत्यादि सीधे आमजनता की नज़रों के सामने पहुंचते हैं, और ये तो सभी जानते हैं कि किसी भी बात को सुनने की अपेक्षा आंखों से देखने पर उसका असर मस्तिष्क पर अधिक पड़ता है। कुछ स्तरीय साहित्यिक कहानियों पर भी सीरीयल तथा सिनेमा बनने लगे हैं। और इस तरह साधारण तथा कम पढ़ी-लिखी जनता भी अच्छे साहित्यकारों को जानने तथा समझने का अवसर प्राप्त कर लेती हैं।जैसा कि मैंने पहले भी कहा है आंखों देखी बातें मन पर त्वरित और गहरा प्रभाव छोड़ती है।

मानव मन ऐसा होता है कि उसे जो चीजें अच्छी लगती हैं, सब यथा-शक्ति अपनाना चाहता है, चाहे बात-चीत का ढ़ंग हो या, कपडे पहनने का तरीका अथवा जीने का ढंग। वह कोशिश अवश्य करता है अपने आदर्श एवं प्रिय चरित्र को जीवन में उतारने का, स्वयं वैसा ही बनने का, चाहे उपन्यास का पढ़ा पात्र हो या चलचित्र और नाटक का देखा हुआ। कुछ बातें हृदय में दया, प्रेम और करूणा का संचार करती हैं, तो कुछ गुस्सा, वैमनस्य और घृणा बढ़ाती हैं। उन्ही में से कोई एक व्यक्ति जब जीवन के अनुभव से लबालब हो कलम उठा लेता है तो, एक कहानी जन्म लेती है, एक लेख लिखा जाता है,कुछ कवितायें कागज पर उभर आती हैं और कितने ही नाट्य-नाटिकायें अपना रूप ले लेती हैं और इस तरह साहित्य का सृजन होता है।

दूसरी तरफ समाज के दूसरे लोग जब इस साहित्य को पढ़ते हैं तो, उसमें उन्हें अपना भी जीवन कहीं-न-कहीं किसी-न-किसी रूप में प्रतिबिम्बित होते दिखायी देता है, कभी-कभी जीवन की किसी समस्या का समाधान भी उन्हें सद्साहित्य के पढ़ने से मिल जाता है, क्योंकि अच्छे साहित्य का निर्माण हमेशा सत्य और अनुभव के आधार पर ही होता है।

जिस तरह अनुपयुक्त और सड़ा-गला भोजन शरीर में विकार उत्पन्न करते हैं, उसी तरह अश्लील और स्तरहीन रचनायें मन-मस्तिष्क को विकृत कर देती हैं। शरीर को बढ़ाने और बलशाली बनाने के लिये अच्छे स्वास्थ्यवर्धक भोजन आवश्यक हैं, उसी प्रकार मन-मस्तिष्क को स्वस्थ तथा उर्जावान बनाये रखने के लिये अच्छे साहित्य का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है। इतिहास गवाह है कि साहित्यकारों एवं बुद्धिजीवियों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से समाज को हमेशा एक नयी दिशा दी है।

इस तरह हम देखते हैं कि मानव के जीवन को सार्थक करने में साहित्य का योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं आवश्यक है। साहित्य का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है, साहित्य किसी भी समाज, वर्ग,भाषा क्षेत्र और देश से परे है। अपने देश कीतो कोई बात ही नहीं, विदेशी भाषा की रचनाएं भी कभी-कभी मन को झकझोर देती हैं, और तब लगने लगता है मानव-मन में कोई भेद नहीं, सबकी आत्मा एक ही तरह की है, केवल भौगोलिक, सामाजिक और राजनैतिक परिवेश अलग होने के कारण ही सबकी सोच अलग-अलग है।

जिस देश का साहित्य जितना अधिक समृद्ध एवं उच्च कोटि का होता है, वहां के अधिकांश नागरिक भी उतने ही सभ्य,सुशिक्षित एवं प्रगतिशील होते हैं।एक अच्छी रचना अगर हम पूरे मन से पढ़ते हैं, उसका मनन करते हैं,तो हमारे अन्दर एक साक्षी भाव का उदय होता है, जो हमें स्वार्थ से ऊपर उठाकर निरपेक्ष और दूर-दृष्टि प्रदान करता है। साहित्यकार घर,परिवार, समाज से ही उदित होते हैं,और अपनी बुद्धि, विवेक, विचारों का मंथन कर लेखनी द्वारा साकार रूप देकर समाज के सामने प्रस्तुत करते हैं।जैसा कि हम जानते हैं न तो हर व्यक्ति को एक जैसा पारिवारिक माहौल मिलता है न एक-जैसे माता-पिता, सबकी सोच, बुद्धि, विवेक अलग होती है। एक ही परिवार के बच्चों के सोच में भी बहुत अंतर रहता है। अच्छा और बुरा दोनों तरह का साहित्य का सृजन हमेशा से होता आया है और होता ही रहेगा।

मनुष्य अपनी रूचि और समझ के अनुसार पुस्तकों का चयन करता है,और अपनी बुद्धि, विवेक के आधार पर अध्ययन कर,चरित्र के निर्माण के साथ ही अपना जीवन लक्ष्य भी निर्धारित करता है।

मानव के जीवनप्रबन्धन में साहित्य का सहयोग सार्वभौमिक और सार्वकालिक रहा है और रहेगा।

प्रेम का महत्त्व-दहशत के समय

मुझे तो लगता है प्रेम की, उसकी अभिव्यक्ति की सर्वाधिक आवशयकता दहशत के इस काल में ही है। इसमें कोई संदेह नहीं कि प्रेम एक शाश्वत सत्य है। यह हृदय की, मानव मन की ऐसी अनुपम अनुभूति है, जिसे सबसे पहले मनुष्य स्वयं समझता है,तत्पश्चात उसे वाणी से, व्यवहार से प्रकट करता है।

मानव जब शिशु रूप में पृथ्वी पर आता है, तो सर्वप्रथम वह प्रेम भरा स्पर्श ही पहचानता है।फिर ऐसा कैसे हो जाता है कि मनुष्य से मनुष्य डरने लगे, न सिर्फ डरे वरन डर से कांप उठे, घृणा से भर जाय, पूरा माहौल ही दहशत से भर उठे। लेकिन आज ऐसा ही हो रहा है। मनुष्य सबसे अधिक मनुष्य से ही डरने लगा है। विश्वास नाम की कोई चीज ही नहीं बची है, और न सम्बन्धों की कोई गरिमा। पता नहीं सब किस हड़बड़ी में हैं? और क्या पाना चाहते हैं?

मुझे विश्वास है कि कोई भी मनुष्य जन्मजात बुरा नहीं होता कि,वह अकारण मार-पीट या गाली-गलौज करें, हत्या या बलात्कार शुरू कर दे।लेकिन वर्तमान मेरे इस विश्वास की धज्जियां उड़ाता, मुंह चिढ़ाता सा लगता है।

जब मैं नित्य सुबह-सुबह अखबार खोलती हूं,और पढ़ती हूं कि 'वसुधैवकुटुम्बकम' कहनेवाले हमारे ही देश के माता-पिता अपने ही सन्तानों के हाथ किस तरह अपमानित और प्रताड़ित होते रहते हैं। अपनों के बीच भी

वे अपने आपको नितान्त अकेले, उपेक्षित एवं असहाय समझते हैं, तथा एक-एक चीज के लिये तरसते हुये अंतिम समय बिताते हैं। किसी-किसी का तो अपना घर भी छिन जाता है। बढ़ते परिवार में जगह की कमी के चलते भी, अपने ही घर से निराश्रित कर उन्हें बृद्धाश्रम भेजा जाता है। तो मेरा मन रो पड़ता है। कोई-कोई बृद्ध ऐसे भी होते हैं, जो मन को पत्थर बना, मात्र जिन्दा रहने के लिये अपने ही कलेजे के टुकड़े के विरूद्ध न्यायालय के चक्कर लगाते रहते हैं, देर-सबेर न्याय तो उन्हें मिल भी जाता है, किन्तु क्या मान-सम्मान, प्रेम उन्हें अपने ही घर में मिल पाता है? लोग बुढ़ापे में आराम से रहने के लिये घर बनाते हैं, पैसा जोड़ते हैं, और एक दिन उसी घर में, घर या पैसों के लिये भी, निर्दयतापूर्वक मार दिये जाते हैं या अकेलेपन और असहाय अवस्था में तिल-तिल कष्ट भोगते हुये मृत्यु को प्राप्त होते हैं। क्या है ये सब ? कहां गयी मानवीय संवेदनायें !

कहते हैं मनुष्य ने आज आशातीत प्रगति की है। विज्ञान ने सब कुछ संभव कर दिया है। लेकिन क्या कम्प्यूटर और रोबोट बनाते-बनाते मानव स्वयं भी रोबोट बन गया है? उसने मनुष्यता को उठाकर अपने से दूर फेंक दिया है, और तथा कथित डिग्रीयों, उपलब्धियों और अनुसंधानों का लबादा ओढ़े अपने को महान सृजक मान बैठा है?

मुझे तो कभी-कभी ऐसा ही लगता है, जब मैं कुछ आधुनिक सक्षम युवाओं को अपनी उपलब्धी और क्षमताओं पर इतराते, बुजुर्गों का उपहास उड़ाते देखती हूं, तो उनकी समझ पर दया आती है। लेकिन इसकी परवाह किसे है? अपनी महत्त्वाकांक्षा, शौक और दिखावे एवं तथाकथित आधुनिकता

के चक्कर में वे न तो बुजुर्गों का सम्मान करते हैं, न मित्रता की कद्र, और तो और अपनी पाशविक ईच्छा, जिद्द के आगे महिलाओं की जो दुर्गति ये कर रहे हैं, यह किसी से छिपी नहीं है। रिश्ता एवं उम्र का कोई मायने ही नहीं बचा है, इनकी नज़र में। जब मैं किसी अबोध बच्ची को इनके बहशीपन का शिकार हुआ सुनती हूं, तो मेरी आंखें भर आती हैं, झुक जाती हैं, और अंतरात्मा जैसे सुन्न हो जाती है। ये क्या हो रहा है! एक तरफ तो हमारी बेटियां जल, थल, नभ सब जगह अपना परचम फहरा रही हैं, हर क्षेत्र में सफलता के उच्चतम शिखर को छू रही हैं, दूसरी तरफ उसके साथ ये दरीन्दगी, उसके जीवन का ऐसा दर्दनाक अंत?

बहुत सोचने पर लगता है, इन सबके लिये हमलोग भी जिम्मेवार हैं। हमारी पीढ़ी ने ही अपनी जिम्मेवारी का निर्वहन सही ढ़ंग से नहीं किया। बच्चों का चरित्र निर्माण ठीक से हुआ ही नहीं, उन्हें उचित-अनुचित का अंतर समझ में आया ही नहीं।

शायद हम ही उन्हें ठीक से समझा नहीं सके, या फिर अपनी महत्वाकांक्षा को उनके माध्यम से पाने की चेष्टा की, जो गलत है। इसीलिये वर्तमान पीढ़ी के मनुष्य को अपनी गलती का फल भोगना ही पड़ता है, साथ-साथ दूसरे भी उस चक्कर में पड़ते हैं, उसी तरह जैसे 'गेहूँ के साथ घुन भी पिसाता है'। इन सारी समस्यायों का समाधान क्या है? क्या करें? कुछ समाधान निकलता दिखायी नहीं देता। सामाजिक बहिष्कार, निन्दा,कानूनी

दांव-पेंच सब जैसे इनके सामने बौने हो जाते हैं। सामाजिक भर्त्सना की परवाह नहीं इन्हें। कानून न के चंगुल से भी निकल ही जाते हैं, कभी ना कभी।

मुझे लगता रहता है कि ये वो लोग हैं, जिन्हें परिवार में समुचित स्नेह, प्यार, सम्मान समुचित रूप में नहीं मिला, या तो उपेक्षित रहे या फिर बहुत अधिक लाड़ मिला, जो मांगा तुरन्त हाजिर। गलती की, लापरवाही हुयी, तो उसका फल भोग रहे हैं। अपने किये कर्म से भाग नहीं सकते। अच्छे कर्म किये अपने दायित्वों का निर्वहन किया तो, उसका फल अवश्य मिलेगा सुख, सम्मान प्रेम, प्रतिष्ठा सब इसी जीवन में मिलेगा।अगर कभी कहीं चूक हुयी तो उसका भी दुष्परिणाम इसी जीवन में मिलेगा ही।

'जब जागो तभी सबेरा' उक्ति को सार्थक करते हुये हमें अपने स्तर से भी प्रयास करना ही चाहिये। मानव-मन प्रेम का भूखा होता है। वह चाहता है कि सब उसकी तरफ ध्यान दें, उसे महत्त्व दें, उससे प्रेम करें। प्रेम मानव मन की पवित्र धारणा है। उसे विकृत न करें। इसलिये भटके हुये मानव-मन को रास्ते पर लाने के लिये दहशत के इस युग में भी प्रेम का गीत लिखना ही पड़ेगा, गाना भी पड़ेगा और सभी को समझाना भी होगा। तभी दहशत का ये माहौल बदलेगा और सुख-शांति, आदर-प्रेम तथा भाई-चारे का वातावरण पुन: आयेगा।

रीतियों को बचायें-कुरीतियां बनने से

सभी देशों के अलग -अलग समाजों में कई तरह के रीति-रिवाज प्रचलित हैं। कोई भी देश या समाज इससे छूटा नहीं है। परम्परायें, प्रथा, रीति-रिवाज प्राचीन काल से ही चली आ रही हैं। अगर हम कहें कि, मनुष्य जब से संगठित रूप से रहने लगे, तभी से उन्होंने अपनी सुविधा, सुरक्षा एवं प्रसन्नता प्रकट करने के लिये, अलग-अलग अवसरों पर विभिन्न प्रकार के आयोजनों को करना प्रारम्भ कर दिया तो शायद यह अनुचित नहीं होगा। इस तरह हम कहते हैं कि जैसे-जैसे मनुष्य का सामाजिक-जीवन आकार लेता गया रीति-रिवाज और प्रथायें भी अपना रूप पकड़ती गयी, कुछ समय पश्चात ये रीति-रिवाज और प्रथायें ही परम्परा का रूप धर लेती हैं, और मानव पर मानसिक एवं सामाजिक दबाव डालने लगती है। समय के साथ-साथ मानव अनेक समूहों, समुदायों में बंट गया।

भौगोलिक एवं स्थानीय कारणों से सुविधायें, सुरक्षा के साधन तथा प्रसन्नता प्रगट करने के तरीके भी बदल गये, और बदल गयी, रीति-रिवाज, प्रथा और परम्परायें। कालान्तर में कुछ रीति-रिवाज, जिन्हें मनुष्य सामाजिक दबाव के चलते, तथा दूसरों के देखा-देखी बिना समझे करने लगे, रूढियां बन जी का जंजाल बन गयी, बिना सोचे समझे दूसरों के देखा-देखी इसे करते रहने से मनुष्य का सहज, स्वाभाविक प्रसन्नता, सुविधायें और स्वास्थ्य सभी प्रभावित होने लगा और तभी से शुरू हुआ समाज में एक दूसरे से द्वेष, असन्तोष और ईर्ष्या, जो सामाजिक पतन का प्रमुख कारण बना।

वर्तमान में तो रीति-रिवाजों की समस्यायें विचित्र रूप धारण करती जा रही हैं। बढ़ते हुये संचार के साधनों, सुलभ यातायात, आर्थिक समृद्धि तथा आधुनिकता के दंभ ने व्यक्ति को चौराहे पर खड़ा कर दिया है। जहां वह

समझ नहीं पा रहा कि, किधर जायें? क्या करें, किसे छोड़ दें या फिर किसे अपनायें।

परम्परायें छोड़ने का मन नहीं करता और नवीनता, आधुनिकता तेजी से अपनी ओर खींचती है। परिणाम स्वरूप वह दोनों का निर्वाह करता है, या करने की कोशिश करता है।

जो आर्थिक एवं सामाजिक रूप से समृद्ध रहता है, वह तथाकथित उच्चवर्ग तो अपनी इच्छानुसार सब कुछ कर ही लेता है, क्योंकि पैसों की कमी नहीं रहती, और सब काम करने के लिये भी हमेशा दस हाथ तैयार ही रहते हैं। सामाजिक एवं आर्थिक रूप से सबसे निचले पायदान पर रहने वाले लोग भी अपने मन को, समझा लेते हैं कि ये सब ताम-झाम हमारे लिये नहीं, ये तो बड़े लोगों के चोंचलें हैं। वे जैसे होता है, अपनी सामर्थ्य अनुसार सारे काम करते रहते हैं, और उसी में खुश भी रहते हैं।

सबसे ज्यादा परेशान होता है, इन रीति-रिवाजों में मध्यम वर्ग, जो बहुत ही महत्वाकांक्षी तथा दु: साहसी होकर एक ही छलांग में सब कुछ पाना चाहता है, कुछ तो सफल हो जाते हैं, वहीं कुछ मुँह के बल गिरते हैं। बेटा-बेटी में आज के समझदार माता-पिता कुछ भी भेद-भाव नहीं करते, जन्म से लेकर उच्चशिक्षा तक, पालन-पोषण तक में समानता रखते हैं, फिर भी मैंने बेटी की शादी के लिये पैसा जोड़ते एवं परेशान होते, तथा शादी के समय भारी दहेज के अलावा अपने मन से अनाप-शनाप खर्च करते अनेक अभिभावकों को देखा है, भले ही बेटी की शादी के पश्चात वे आर्थिक एवं मानसिक रूप से पस्त ही क्यों न हो जायें। मुझे लगता रहता है कि अभिभावकों को स्वयं ही अपनी स्थिति को समझते हुये रिश्ता तय करना चाहिये, और झूठे दिखावे और आडम्बर से यथासाध्य बचना चाहिये।

बारातियों का स्वागत सत्कार, खान-पान करें, किन्तु मैंने कई जगहों पर इन अवसर पर भोजन की बर्बादी देखी है, जो निराशाजनक है। जबर्दस्ती पत्तल पर भोजन डालना तो बिल्कुल ही छोड़ दें। बुफे में भी अपनी प्लेट में

उतना ही भोजन लें, जितना आसानी से खा सकें। बेटी-दामाद के संग बारातियों और सगे संम्बन्धियों के लेन-देन में भी अपनी सीमाओं को न भूलें। इच्छा सबकी रहती है, अपनी लाडली बेटी की शादी पर बहुत-कुछ करने की, किन्तु अपनी सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति को समझते हुये एक सीमा-रेखा तो तय कर ही लेनी चाहिये, इसी में सबकी भलाई है।

इसी तरह छोटे-छोटे आयोजनों में भी जैसे-विवाह की वर्षगांठ, बच्चों के जन्म-दिन पर भी लोग दूसरों के देखा-देखी इतनी बड़ी-बड़ी पार्टी रखते हैं, इतना भव्य आयोजन करते हैं कि देख के ताज्जुब होता है कि कैसे समय और पैसों की कमी की दुहाई देने वाले ये सब कर लेते हैं। कभी-कभी शादी की पचीसवीं या पचासवीं वर्षगांठ पर लोगों को ऐसा आयोजन करते देखा है कि उसके आधे खर्चे में किसी गरीब की बेटी की शादी अच्छे से हो जाय।

मैं ये नहीं कहती, कि लोग समारोह का आयोजन नहीं करें। शुभ अवसर पर सगे-संबन्धियों को अवश्य बुलायें, उनकी खुशियों में शामिल भी हों, लेकिन एक सीमा के अंदर। ये नहीं भूलें कि आप सक्षम हैं तो कुछ भी कर लेंगे, आपके कामों का प्रभाव दूसरे पर भी पड़ता है।

स्वयं हम इसी तरह प्रगतिशील होने का, आधुनिक होने का दावा करने वाले कुछ लोगों को हम अपने अगल-बगल, आस-पास भी देखते हैं, जो तरह-तरह के अंधविश्वासों से रूढ़ियों से जकड़े हुये हैं, हमें उन्हें भी समझाने का प्रयास करना चाहिये। बाल-विवाह, दहेजप्रथा, विधवा विवाह का विरोध, जाति-भेद इत्यादि कानूनन अपराध माने गये हैं, फिर भी ये कुरीतियां समाज के हर वर्ग में झों की तरह चिपटी हुई हैं कहीं कम कहीं ज्यादा, लेकिन कोई समाज इससे अछूता नहीं है। इसे दूर करना ही होगा।

स्वतंत्रता वरदान है-उसकी गरिमा बनाये रखें

स्वतंत्रता का वास्तविक अर्थ समझना बहुत कठिन है, लेकिन यह आवश्यक है, क्योंकि इसे ठीक से नहीं समझ पाने के कारण ही बहुत सारे अनर्थ आज हो रहे हैं, और कल भी होते रहेंगे। मेरी समझ से स्वतंत्रता का वास्तविक अर्थ है 'कर्म, वचन, मन और अर्थ से किसी दूसरे पर आश्रित नहीं रहना।' अपनी इच्छा और रुचि अनुसार काम करना, जो सही और उचित लगे वह बोलना, किसी भी बात का निर्णय किसी के दबाव में न आकर अपने मन, बुद्धि-विवेक से करना, तथा आर्थिक रूप से सक्षम होना।

मुझे लगता है कि इनमें से किसी के भी अभाव में हम अपने को पूर्ण स्वतंत्र नहीं कह सकते। यहां हमें यह भी याद रखना चाहिये कि स्वतंत्रता के साथ ही कुछ अधिकार भी स्वयं ही प्राप्त हो जाते हैं। बगैर अधिकार के स्वतंत्रता कोई मायने नहीं रखती और अधिकार के साथ ही जुड़ा हुआ है कर्तव्य, अपना कर्तव्य किये बगैर कोई भी कहीं भी अधिकार का सुख अधिक समय तक नहीं प्राप्त कर सकता। यह मेरा विश्वास है।

स्वतंत्रता कई तरह की होती है। पहली है राजनैतिक स्वतंत्रता, जो हम लोग प्राप्त कर चुके हैं। लेकिन इसे अक्षुण्ण बनाये रखने के लिये हमें बाहरी और भीतरी दोनों संयंत्र पर निरंतर प्रयास करते रहना होगा। सबसे पहला प्रयास हमें ही करना पड़ेगा, क्योंकि किसी भी तरह के राजनैतिक उथल-पुथल का पहला शिकार हमें ही बनना पड़ता है। जब कोई सरकार गिरती है या, नयी सरकार बनने की प्रक्रिया शुरू होती है, हम देखते हैं, कि हमारा बहुत सा काम रूक जाता है। काम तो होगा लेकिन कब होगा, कोई नहीं

कहता। प्रजातंत्र में प्रजा यानी हम ही शुरूआत करते हैं, सरकार बनाने का, ऐसे व्यक्ति को चुनने का, जो हमारी समस्या को समझ सके और उसके समाधान के लिये कुछ करवा सके। इसके लिये हमें अपनी बुद्धि से तर्क-वितर्क से विचारना होगा। सभी तरह के प्रलोभन चाहे वह पद का हो, पैसे का हो, रिश्तेदारी या किसी तरह के लाभ का, उसमें बिना उलझे योग्य एवं कर्मठ व्यक्ति को ही समर्थन देकर। उससे भी अधिक आवश्यक है कि हमें भारतीय होने का गर्व हो। हम किसी भी जाति, समाज या क्षेत्र के हों, चाहे कोई भी भाषा भाषी हों,सबसे पहले भारतीय हैं, भारत की ओर उठी उंगली को पहले तोड़ेंगे, तब दूसरी समस्यायों को सुलझायेंगें। सबसे पहले अपनी भौगोलिक सीमाओं को सुरक्षित रखना होगा। तभी हमारी राजनैतिक स्वतंत्रता सुरक्षित रहेगी।

दूसरी है मानसिक स्वतंत्रता, जो शायद हम अभीतक पूर्णरूपेण प्राप्त नहीं कर पाये हैं। इसके लिये आवश्यक है, स्वयं को जानने की, अपना आत्मबल, अपना आत्मसम्मान जगाने की। हमें इस बात पर गर्व होना चाहिये कि हम भारतीय हैं,अनेकता में एकता का संदेश देता हुआ मेरा भारत विभिन्न संस्कृतियों का, सभ्यतायों का केन्द्र बना हुआ है, प्राचीन एवं अर्वाचीन विद्या एवं ज्ञान का अद्‌भुत संगम है यहां। नवीन वैज्ञानिक ज्ञान पाने की तीव्र ललक है हमारे अंदर, तो अपने वेद, पुराणों को जानने समझने के लिये भी वैसी ही जिज्ञासा, जो हर विषय के ज्ञान का अथाह सागर है।

हमारी भाषायें भी बहुत ही समृद्ध हैं, संस्कृत तो सारे भाषाओं की जननी ही है। इसलिये विश्व में कहीं भी सम्वाद स्थापित करने के लिये हमें दूसरी भाषा पर ही निर्भर नहीं रहना है। हमारी संस्कृति एवं सभ्यता बहुत

ही अच्छी एवं विज्ञान सम्मत है, जिस दिन हम इसे अच्छी तरह जान जायेंगे, समझने लगेंगे और बेझिझक अपनाने लगेंगे तो मान लें कि मानसिक गुलामी से मुक्ति प्राप्त कर सही अर्थ में स्वतंत्र हो जायेंगे हम।

तीसरी है बोलने की स्वतंत्रता, एक स्वतंत्र एवं प्रजातंत्र देश के नागरिक होने के कारण हमें बोलने की स्वतंत्रता मिली हुयी है, लेकिन कुछ भी बोलने से पहले हमारा कर्तव्य हो जाता है कि हम जो भी बोलें सोच-समझकर और सार्थक बोलें। हमें यह कभी नहीं भूलना चाहिये कि हम जो कुछ भी बोलेंगे वह सब सुनेंगे, अपने-अपने ढ़ंग से सोचेंगे, समझेंगे तथा प्रतिक्रिया अवश्य ही देंगे। एक बार मुंह से निकली बात फिर वापस नहीं आती, इसलिये अगर ऐसी कोई बात हम सोचते हैं, तथा बोलना चाहते हैं, जो किसी व्यक्ति, परिवार या समाज या देश के हित में हो अवश्य बोलें, और अच्छी तरह सोच -समझकर बोलें। जिससे दूसरों पर आपकी बातों का सकारात्मक और सही प्रभाव पड़े। बोलने का अधिकार है, तो इसका यह मतलब नहीं कि हम घर-परिवार समाज या देश, संसार के किसी भी व्यक्ति के बारे में कुछ भी बोल दें, तब हमारी बोलने की स्वतंत्रता खतरे में पड़ जायगी, और बोलने से ही हमारे सोच-समझ का स्तर प्रकट होता है। इसलिये बिना सोचे-समझे नहीं बोलें।

चौथा है आर्थिक स्वतंत्रता, यह अपनेआप में बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त किये वगैर हम जीवन में कुछ भी नहीं कर सकते। हमें कदम-कदम पर दूसरे पर आश्रित रहना ही पड़ेगा, जिससे हम आर्थिक सहायता लेंगे उसकी बातों को महत्त्व देना ही पड़ेगा। आर्थिक रूप से स्वावलंबी बनकर ही हम वास्तविक और स्थायी स्वतंत्रता के अधिकारी हो सकते हैं, इसमें मुझे कोई संदेह नहीं है। व्यक्ति हो या राष्ट्र, आर्थिक परतंत्रता

के सामने कोई भी स्वतंत्रता स्थायी नहीं रहा करती, बीता हुआ कल हो, आज हो या आने वाला कल। राजनैतिक, मानसिक, वाचिक एवं आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त किये बगैर किसी भी स्वतंत्रता या अधिकार का महत्त्व नहीं है।

व्यक्तित्व दर्पण

नाम	- माधुरी मिश्रा
जन्मतिथि	- 20/10/1945
शिक्षा	- एम.ए.(समाज शास्त्र)
वर्तमान पता	- आर.बी.5, 346 ए. पचपेढ़ी, जबलपुर (मध्यप्रदेश)
मो.नं.	- 9669017285
ई मेल	- madhuri201044@gmail.com
विद्या	- गद्य
प्रकाशन	- मैथिली पत्रिका 'मिथिलामिहिर' में। कुछ सूखे कुछ हरे पात (कथा संग्रह) अंतरा शब्द शक्ति एवं वुमन आवाज।
सम्मान	- वुमन आवाज 2018 सम्मान।
प्रसारण	- आकाशवाणी पटना, दरभंगा एवं जबलपुर से अनेक वार्तायें प्रसारित।
लेखन का उद्देश्य	- स्वान्तः सुखाय एवं सामाजिक कुरीतियों पर प्रहार।

यदि आप अंग्रेजी में हस्ताक्षर करते हैं तो निवेदन है कि 'हिन्दी में हस्ताक्षर करें', आपकी यह छोटी-सी कोशिश हिन्दी को राजभाषा से राष्ट्रभाषा बनाने में अमूल्य योगदान देगी ।

अन्तरा शब्दशक्ति
www.antrashabdshakti.com
१५, नेहरु चौक, मेन रोड वारासिवनी,
जि. बालाघाट (म.प्र.) पिन ४८१३३१,
संपर्क- ९४२४७६५२५९,
अणुडाक: antrashabdshakti@gmail.com
978-93-86666-56-7
मूल्य- 55/-